इकाई 5 अच् सन्धि – भाग 2

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- अच् सन्धि के **एङि पररूपम्** (6.1.94) सूत्र से लेकर **ऋत्यकः** (6.1.128) तक के सूत्रों के सूत्रार्थ एवं उदाहरणादि से परिचित हो सकेंगे।
- पररूप, पूर्वरूप और प्रकृतिभाव के स्थलों में सन्धि एवं सन्धिविच्छेद करना तथा उसकी प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- विशेषकर सन्धियोग्य स्थलों में सन्धिकार्य के अभाव के स्थलों से परिचित हो सकेंगे।
- एक स्थानी के स्थान पर अनेक आदेशों की प्राप्ति होने पर क्या व्यवस्था होगी? यह भी जान सकेंगे।
- टि, प्रगृह्य एवं निपात आदि संज्ञाओं से भी परिचित हो सकेंगे।
- परिभाषासूत्रों की कार्यविधि को समझ सकेंगे।
- उत्सर्ग-अपवाद नियम को और अच्छी प्रकार से जान सकेंगे।
- **अलोऽन्त्यस्य, अनेकाल् शित् सर्वस्य** एवं **ङिच्च** इन परिभाषासूत्रों के परस्पर अन्तर को समझ सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व आप सन्धिप्रकरण के अन्तर्गत यण्, अयादि, गुण और वृद्धि सन्धि को भली-भाँति पढ चुके हैं। इस इकाई में आप अच् सन्धि के पूर्वरूप के बाद की सन्धियों का अध्ययन करेंगे। प्रस्तुत इकाई में आप पररूप, दीर्घ, पूर्वरूप आदि सन्धियों तथा प्रकृतिभाव के विभिन्न स्थलों के अध्ययन के साथ ही टिसंज्ञा, प्रगृह्यसंज्ञा और निपातसंज्ञा के सूत्रों एवं उनके उदाहरणों तथा अतिदेशव्यवस्था से भी परिचित होंगे। इसी क्रम में हम विधिसूत्रों के अर्थोपकारक कुछ मुख्य परिभाषासूत्रों को भी जानेंगे। परिभाषासूत्रों में भी परस्पर अपवादत्व का भाव होता है, जिससे कुछ एक स्थानों पर

उनके अवकाश को समझना अनिवार्य होता है। इस इकाई में इन सबका हम भली-भाँति अध्ययन करेंगे।

5.2 अच् सन्धि–एङि पररूपम् सूत्र से ऋत्यकः सूत्र पर्यन्त।

सूत्र – एङि पररूपम्(6.1.94)

वृत्ति – आदुपसर्गादेङादौ धातौ परे पररूपमेकादेशः स्यात्।

सूत्रार्थ – अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि धातु के परे रहते पूर्वपर के स्थान में पररूप एकादेश होता है।

उदाहरण – प्रेजते, उपोषति।

व्याख्या – यह पररूपविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'एङि' यह सप्तमी एकवचन तथा 'पररूपम्' प्रथमा एकवचन का पद है। यह सूत्र अनवकाश होने के कारण वृद्धिरेचि सूत्र का अपवाद है। पररूप एकादेश का अभिप्राय यह है कि पूर्व एवं पर में स्थित दोनों वर्णों के स्थान में परवर्ण जैसा रूपवाला एकादेश होना।

रूपसिद्धि –

प्रेजते – प्र+एजते इस स्थिति में **वृद्धिरेचि** सूत्र से वृद्धि प्राप्त है जिसे बाधकर प्र इस अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि धातु के परे रहते **एङि पररूपम्** सूत्र से पूर्वपर (अ+ए) के स्थान पर पररूप (परवर्ती वर्ण के जैसा रूप ए) हुआ। प्र+एजते इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करने से प्रेजते रूप सिद्ध हुआ।

उपोषति – उप+ओषति इस स्थिति में **वृद्धिरेचि** सूत्र से वृद्धि प्राप्त है जिसे बाधकर उप इस अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि धातु के परे रहते **एङि पररूपम्** सूत्र से पूर्वपर (अ+ओ) के स्थान पर पररूप (परवर्ती वर्ण के जैसा रूप ओ) हुआ। उप्+ओषति इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करने से उपोषति सिद्ध हुआ।

सूत्र – अचोऽन्त्यादि टि(1.1.64)

वृत्ति – अचां मध्ये योऽन्त्यः, स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात्।

सूत्रार्थ – अचों के मध्य में जो अन्तिम अच्, वह है आदि में जिसके, उस शब्दसमुदाय की टिसंज्ञा होती है।

व्याख्या – यह संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'अचः' यह षष्ठी एकवचन का तथा 'अन्त्यादि' एवं 'टि' ये प्रथमा एकवचन के पद हैं।

यह सूत्र किसी शब्द के अचों के मध्य में जो अन्तिम अच्, वह है आदि में जिसके, उस शब्दसमुदाय की टिसंज्ञा करता है। जैसे मनस् शब्द में दो अच् हैं मकारोत्तरवर्ती अकार तथा नकारोत्तरवर्ती अकार। इनमें से अन्तिम अच् नकारोत्तरवर्ती अकार है। वह अन्तिम वर्ण स् के आदि में है। अतः उन दोनों का समुदाय अस् हुआ। अतः मनस् में अस् की टिसंज्ञा हुई। जहाँ पर एक ही अच् हो अथवा अच् के बाद कोई अन्य हल् वर्ण न हो तो केवल उसी अच् की व्यपदेशिवद्भाव से टिसंज्ञा होती है। जैसे राम इस शब्द में अन्तिम अच् मकारोत्तरवर्ती अकार की ही टिसंज्ञा होती है।

वार्तिक – शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्। तच्च टेः। शकन्धुः। कर्कन्धुः। मनीषा। आकृतिगणोऽयम्। मार्तण्डः।

अर्थ – शकन्धुगण पठित शब्दों में (उनके इष्टप्रयोग के अनुरूप) पररूप कहना चाहिए।

उदाहरण – शकन्धुः। कर्कन्धुः। मनीषा। मार्तण्डः।

व्याख्या – यह वार्तिक पररूपप्रकरण में पठित है। इस प्रकरण में **एकः पूर्वपरयोः** का अधिकार है। अतः इस वार्तिक से भी पूर्वपर के स्थान पर पररूप होता है।

तच्च टेः – अर्थात् वह पररूप टिसंज्ञक पूर्व तथा पर अच् के स्थान पर समझना चाहिए।

आकृतिगणोऽयम् – शकन्धु आदि शब्दों का समूह (गण) आकृतिगण माना जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि गणपाठ में शकन्ध्वादिगण के अन्तर्गत जितने शब्द पठित हैं, ये इतने ही हैं, ऐसा नहीं समझना चाहिए। अपितु जिन-जिन शब्दों में पररूप की अप्राप्ति होने पर भी इष्टप्रयोग में पररूप कार्य हुआ दिखाई दे उसे इस गण के अन्तर्गत मान लेना चाहिए, जैसे – 'मार्तण्डः' इस लोकप्रसिद्ध शब्द में मार्त+अण्डः इस स्थिति में यद्यपि पररूप अप्राप्त है और पररूप के बिना यह सिद्ध भी नहीं हो सकता। साथ ही शकन्ध्वादिगण में इसका शाब्दिक पाठ भी नहीं है। परन्तु शिष्टप्रयोगों में पररूप से युक्त शब्द ही मिलता है। शकन्ध्वादिगण में इसका पाठ मानने से समाधान हो सकता है, अतः आकृतिसाम्य (पररूप वाली आकृति की समानता) के कारण इसे तथा इसी प्रकार के अन्य शब्दों को शकन्ध्वादिगण में पठित और इस गण को आकृतिगण मान लिया जाता है।

रूपसिद्धि –

शकन्धुः – शक+अन्धु इस स्थिति में **अचोऽन्त्यादि टि** से शक के अन्तिम अच् (ककारोत्तरवर्ती अकार) की टिसंज्ञा हुई। तत्पश्चात् टिसंज्ञक अकार से परे अन्धु घटक अकार अच् है अतः उन दोनों के स्थान पर **शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्** इस वार्तिक से पररूप एकादेश हुआ। शक्+अन्धु इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा विभक्तिकार्य होकर शकन्धुः रूप सिद्ध हुआ।

कर्कन्धुः – कर्क+अन्धु इस स्थिति में **अचोऽन्त्यादि टि** से कर्क के अन्तिम अच् (ककारोत्तरवर्ती अकार) की टिसंज्ञा हुई। तत्पश्चात् टिसंज्ञक अकार से परे अन्धु घटक अकार अच् है अतः **शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्** इस वार्तिक से पूर्वपर के स्थान में पररूप एकादेश हुआ। कर्क्+अ+न्धु इस स्थिति में वर्णसम्मलेन तथा विभक्तिकार्य होकर कर्कन्धुः यह रूप सिद्ध हुआ।

मनीषा – मनस्+ईषा इस स्थिति में **अचोऽन्त्यादि टि** से मनस् के अस् इस समुदाय की टिसंज्ञा हुई। तत्पश्चात् टिसंज्ञक अस् से परे ईषा घटक ईकार अच् है अतः उन दोनों के स्थान पर **शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्** इस वार्तिक से पूर्वपर के स्थान पर पररूप एकादेश हुआ। मनस्+ईषा इस स्थिति में वर्णसम्मलेन तथा विभक्तिकार्य होकर मनीषा रूप सिद्ध हुआ।

मार्तण्डः – मार्त+अण्ड इस स्थिति में **अचोऽन्त्यादि टि** से टिसंज्ञा व **शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्** इस वार्तिक से पररूप एकादेश होकर मार्तण्डः सिद्ध हुआ।

सूत्र – ओमाङोश्च(6.1.95)

वृत्ति – ओमि आङि चात्परे पररूपमेकादेशः स्यात्।

सूत्रार्थ – अवर्ण से ओम् अथवा आङ् परे रहते पूर्वपर के स्थान में पररूप एकादेश होता है।

उदाहरण – शिवायों नमः।

व्याख्या – यह पररूपविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। ओमाङोः सप्तमी द्विवचन तथा च अव्यय पद है। आत्, एक, पररूप की पूर्वसूत्रों से अनुवृत्ति आती है। ओम् यह अव्यय तथा आङ् यह उपसर्ग है। आङ् के अन्त्य ङ् की इत्संज्ञा तथा लोप होकर आ ही शेष रहता है।

रूपसिद्धि –

शिवायों नमः – शिवाय+ओं नमः इस स्थिति में अवर्ण से अच्/एच् परे होने के कारण प्राप्त गुण/वृद्धि का बाधकर **ओमाङोश्च** इस अपवाद सूत्र से अवर्ण से परे ओम् घटक ओकार होने से उन दोनों (पूर्वपर) के स्थान पर पररूप एकादेश ओ हुआ। शिवाय्+ओं नमः इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके शिवायों नमः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – अन्तादिवच्च(6.1.85)

वृत्ति – योऽयमेकादेशः स पूर्वस्यान्तवत्परस्यादिवत्।

सूत्रार्थ – विधीयमान जो एकादेश वह पूर्व के अन्त के तथा पर के आदि के समान होता है।

उदाहरण – शिवेहि।

व्याख्या – यह अतिदेशसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। अन्तादिवत् और च ये दोनों ही पद अव्यय हैं। एकः, पूर्वपरयोः इन पदों की अनुवृत्ति आती है। सामान्यतः जो जैसा नहीं है उसे वैसा मान लेना (बना देना) अतिदेश है। **अतिदेशो नाम इतरधर्मस्य इतरस्मिन् प्रयोगादेशः** अर्थात् अन्य धर्म का अन्यत्र आरोपण करना ही अतिदेश है। पाणिनि के अतिदेशसूत्र ऐसा ही कार्य करते हैं। प्रस्तुत सूत्र दो स्थानी के स्थान पर हुए एकादेश में उन दोनों स्थानियों के धर्म (स्वभाव) का अतिदेश करता है अर्थात् स्थानी के गुण आदेश में ग्रहण करा देता है जिससे स्थानी सम्बन्धी कार्य हो सकें।

रूपसिद्धि –

शिवेहि – शिव+आङ्+इहि इस स्थिति में शिव+आ में दीर्घ तथा आ+इहि में गुण प्राप्त होने पर पहले कौन हो? यह जिज्ञासा होती है। **असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे** अर्थात् बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग कार्य में बहिरङ्ग कार्य को असिद्ध मानकर पहले अन्तरङ्ग कार्य करना चाहिए तथा **धातूपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गम्** अर्थात् धातु और उपसर्ग का कार्य अन्तरङ्ग होता है। अतः शिव+आ+इहि यहाँ पर द्वितीय कार्य

धातूपसर्ग का कार्य होने से अन्तरङ्ग है अतः पहले वह होगा। तत्पश्चात् आ+इहि में गुण होकर शिव+एहि इस स्थिति में **अन्तादिवच्च** सूत्र से गुणरूप जो एकादेश एकार वह पूर्व के अन्त्य के तथा पर के आदि के समान होता है। यहाँ पर पूर्व स्थानी आङ् घटक आकार है अतः इस सूत्र से एहि के एकार में आङ्त्व धर्म आ गया। जिसके फलस्वरूप **ओमाङोश्च** सूत्र से अवर्ण वकारोतरवर्ती अकार के परे आङ्त्व धर्मवान् ए के परे रहते पूर्वपर के स्थान पर पररूप एकादेश हुआ। शिव्+एहि इस स्थिति में वर्णसम्मेलन होकर शिवेहि रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – अकः सवर्णे दीर्घः(6.1.101)

वृत्ति – अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोर्दीर्घ एकादेशः स्यात्।

सूत्रार्थ – अक् से सवर्णी अच् परे रहते पूर्वपर के स्थान पर दीर्घरूप एकादेश होता है।

उदाहरण – दैत्यारिः। श्रीशः। विष्णूदयः। होतृकारः।

व्याख्या – यह दीर्घविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'अकः' पंचमी एकवचन, 'सवर्णे' सप्तमी एकवचन तथा 'दीर्घः' प्रथमा एकवचन का पद है। अचि, एकः, पूर्वपरयोः इन पदों की अनुवृत्ति आती है। अक् प्रत्याहार (अ,इ,उ,ऋ,लृ) के वर्णों से सवर्णी अच् अर्थात् अ अथवा आ के बाद अ या आ, इ अथवा ई के बाद इ या ई आदि आये तो पूर्वपर के स्थान पर दीर्घरूप एकादेश होता है। यह सूत्र अवर्ण से अ परे होने पर **आद्गुणः** तथा इ,उ और ऋ के प्रसंग में **इको यणचि** का अपवाद है।

रूपसिद्धि –

दैत्यारिः – दैत्य+अरि इस स्थिति में अक् यकारोत्तरवर्ती अकार से परे सवर्णी अच् अरि घटक अकार है अतः **अकः सवर्णे दीर्घः** सूत्र से पूर्वपर के स्थान पर दीर्घरूप एकादेश आ हुआ। दैत्य्+आ+रि इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर दैत्यारिः रूप सिद्ध हुआ।

श्रीशः – श्री+ईश इस स्थिति में अक् श्री का ईकार से परे सवर्णी अच् ईश घटक ईकार है अतः **अकः सवर्णे दीर्घः** इस सूत्र से पूर्वपर के स्थान पर दीर्घरूप एकादेश ई हुआ। श्र्+ई+श इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर श्रीशः रूप सिद्ध हुआ।

विष्णूदयः – विष्णु+उदय इस स्थिति में अक् णकारोत्तरवर्ती उकार से परे सवर्णी अच् उदय घटक आदि उकार है अतः **अकः सवर्णे दीर्घः** इस सूत्र से पूर्वपर के स्थान पर दीर्घरूप एकादेश ऊ हुआ। विष्ण्+ऊ+दय इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर विष्णूदयः रूप सिद्ध हुआ।

होतृकारः –होतृ+ऋकार इस स्थिति में अक् (तकारोत्तरवर्ती ऋकार) से परे सवर्णी अच् (ऋकार शब्द घटक) ऋकार है अतः **अकः सवर्णे दीर्घः** सूत्र से पूर्वपर के स्थान पर दीर्घरूप एकादेश ॠ हुआ। होत्+ॠ+कार इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर होतॄकारः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – एङः पदान्तादति(6.1.109)

वृत्ति – पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्।

सूत्रार्थ – पदान्त में एङ् से अत् परे रहते पूर्वपर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है।

उदाहरण – हरेऽव। विष्णोऽव।

व्याख्या – यह पूर्वरूपविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'एङः' एवं 'पदान्तात्' पंचमी एकवचन तथा 'अति' यह सप्तमी एकवचन का पद है। अन्य पदों का अधिकार तथा अनुवृत्ति आती है। एङ् प्रत्याहार में ए और ओ ये दो वर्ण आते हैं। यदि ये वर्ण पद के अन्त में विद्यमान हों और इनसे परे अत् अर्थात् ह्रस्व अकार हो तो पूर्वपर के स्थान पर पूर्वरूप (पूर्व स्थानी जैसा वर्ण) एकादेश हो जाता है। यह सूत्र **एचोऽयवायावः** का अपवाद है।

रूपसिद्धि –

हरेऽव – हरे+अव इस स्थिति में हरे पद के अन्त में एङ् एकार है तथा उससे परे अव घटक आदि अकार ह्रस्व है अतः **एङः पदान्तादति** सूत्र से पूर्वपर (ए+अ) के स्थान में पूर्वरूप एकादेश ए हुआ। हर्+ए+व इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके रूप सिद्ध हुआ। इस प्रयोग में अवग्रह (ऽ) का चिह्न लगाएँ या न लगाएँ, यह अपनी इच्छा पर आधारित है। यह चिह्न मात्र इस बात को प्रकट करता है कि पूर्वरूप से पहले यहाँ पर अकार था।

विष्णोऽव – विष्णो+अव इस स्थिति में विष्णो पद के अन्त में एङ् ओकार है तथा उससे परे अव घटक आदि अकार ह्रस्व है अतः **एङः पदान्तादति** सूत्र से पूर्वपर (ओ+अ) के स्थान में पूर्वरूप एकादेश ओ हुआ। विष्ण्+ओ+व इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके विष्णोऽव रूप सिद्ध हुआ। इस प्रयोग में अवग्रह (ऽ) का चिह्न लगाना अपनी इच्छा पर निर्भर है। यह चिह्न मात्र इस बात को प्रकट करता है कि पूर्वरूप से पहले यहाँ पर अकार था।

सूत्र – सर्वत्र विभाषाः गोः(6.1.122)

वृत्ति – लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः पदान्ते।

सूत्रार्थ – लोक और वेद में ह्रस्व अकार के परे रहते, एङन्त गो शब्द को पदान्त में विकल्प से प्रकृतिभाव होता है।

उदाहरण – गोअग्रम्, गोऽग्रम्। एङन्तस्य किम् ? चित्रग्वग्रम्। पदान्ते किम्? गोः।

व्याख्या – यह प्रकृतिभावविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'सर्वत्र' अव्यय पद, 'विभाषा' प्रथमा एकवचन तथा 'गोः' यह षष्ठी एकवचन का पद है। प्रकृतिभाव का अर्थ स्वभाव है। वर्णों का स्वभाव उनका स्वरूप ही हो सकता है। प्रकृतिवद् अथवा प्रकृतिभाव से अभिप्राय शब्द का उसके मूल अवस्था में विद्यमान रहना अर्थात् कोई विकार न होना है। सूत्र में एङन्त गो शब्द कहने से समस्त पद चित्रगु आदि में गो शब्द होते हुए भी एङन्त न होने के कारण प्रकृतिभाव नहीं होगा। पदान्त

गो शब्द कहने से अपदान्त पंचमी विभक्ति एकवचन में गो+अस् इस स्थिति में प्रकृतिभाव नहीं होता है।

रूपसिद्धि –

गोअग्रम्, गोऽग्रम् – गो+अग्र इस स्थिति में पदान्त एङ् गकारोत्तरवर्ती ओकर से परे अग्र घटक ह्रस्व अकार है अतः **सर्वत्र विभाषा गोः** सूत्र से प्रकृतिभाव हुआ। गो+अग्र इस स्थिति में विभक्तिकार्य होकर गोअग्रम् रूप सिद्ध हुआ। जब विकल्प पक्ष में प्रकृतिभाव नहीं होगा, तब **एङः पदान्तादति** से पूर्वरूप होकर गोऽग्रम् रूप सिद्ध होगा।

सूत्र – अनेकाल् शित्सर्वस्य(1.1.55)

वृत्ति – इति प्राप्ते (अनेकाल् य आदेशः शिच्च, स सर्वस्य षष्ठी निर्दिष्टस्य स्थाने स्यात्।)

सूत्रार्थ – अनेकाल् (अनेक अल् वर्ण वाला) अथवा शित् जो आदेश वह सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होता है।

व्याख्या – यह परिभाषासूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'अनेकाल्' एवं 'शित्' प्रथमा एकवचन तथा 'सर्वस्य' यह षष्ठी एकवचन का पद है। अनेकाल् अर्थात् एक से अधिक अल् (वर्ण) वाला, शित् अर्थात् शकार इत्संज्ञा वाला। जिस सूत्र से षष्ठी को निर्दिष्ट करके अनेक अल् अथवा शित् आदेश होता है यह सूत्र वहाँ उपस्थित होकर सहायता करते हुए कहता है कि यह आदेश सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर हो। षष्ठी को निर्दिष्ट आदेश अन्त्य अल् के स्थान पर हो ऐसा **अलोऽन्त्यस्य** सूत्र कहता है। जिसका प्रस्तुत सूत्र **अनेकाल् शित् सर्वस्य** अपवाद शास्त्र है। यथा **अतो भिस् ऐस्** यह सूत्र षष्ठी को निर्देश करके भिस् के स्थान पर ऐस् यह अनेक अल् वाला आदेश करता है, अतः **अनेकाल् शित् सर्वस्य** की सहायता से यह आदेश भिस् इस सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होता है।

सूत्र – ङिच्च(1.1.53)

वृत्ति – ङिदनेकालप्यन्त्यस्ययैव स्यात्।

सूत्रार्थ – अनेकाल् होते हुए भी ङित् आदेश अन्त्य अल् के स्थान पर होते हैं।

व्याख्या – यह परिभाषासूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। ङित् प्रथमा एकवचन तथा च यह अव्यय पद है। अन्त्यस्य अल् की अनुवृत्ति आती है। पूर्व सूत्र **अनेकाल् शित् सर्वस्य** का यह सूत्र अपवाद है। अनेकाल् होते हुए भी यदि आदेश ङित् हो तो वह सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर ही होगा। ङित् आदेश अर्थात् जिस आदेश में ङकार की इत्संज्ञा हुई हो। यथा अवङ् यह आदेश ङित् आदेश है अतः यह स्थानी के अन्त्य अल् के स्थान पर ही होगा।

सूत्र – अवङ् स्फोटायनस्य(6.1.123)

वृत्ति – पदान्ते एङन्तस्य गोरवङ् वाऽचि।

सूत्रार्थ – अच् परे रहते, पदान्त में एङन्त गो शब्द को विकल्प से अवङ् आदेश होता है।

उदाहरण – गवाग्रम्, गोऽग्रम्। पदान्ते किम्? गवि।

व्याख्या – यह सूत्र अवङ् विधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'अवङ्' प्रथमा एकवचन तथा 'स्फोटायनस्य' यह षष्ठी एकवचन का पद है। अवङ् में ङकार की **हलन्त्यम्** सूत्र से इत्संज्ञा तथा **तस्य लोपः** से इत्संज्ञक वर्ण का लोप हो जाता है अतः अव ही शेष रहता है। स्फोटायन पाणिनि से पूर्ववर्ती व्याकरण के आचार्य हैं। पाणिनि ने इस सूत्र के माध्यम से उनके मत का उल्लेख किया है। पदान्त में गो शब्द के स्थान पर अवङ् होता है ऐसा कहने से अपदान्त सप्तमी विभक्ति एकवचन में गो+इ (ङि) इस स्थिति में अवङ् आदेश नहीं हुआ तथा यणादेश होकर गवि रूप बना।

रूपसिद्धि –

गवाग्रम् – गो+अग्र इस स्थिति में **सर्वत्र विभाषा गोः** सूत्र के विकल्प पक्ष में **ङिच्च** सूत्र की सहायता से **अवङ् स्फोटायनस्य** सूत्र से गकारोत्तरवर्ती ओकार के स्थान पर अवङ् आदेश हुआ। अवङ् में ङ् इत्संज्ञक है अतः उसका **तस्य लोपः** से लोप हो जाता है। ग्+अव+अग्र इस स्थिति में **अकः सवर्णे दीर्घः** से वकारोत्तरवर्ती अकार तथा अग्र घटक आदि अकार के स्थान दीर्घरूप एकादेश आ होता है। ग्+अवाग्र इस स्थति में स्वादिकार्य होकर गवाग्रम् यह रूप सिद्ध हुआ। गोऽग्रम् की सिद्धि हम **सर्वत्र विभाषाः गोः** सूत्र में कर ही चुके हैं।

सूत्र – इन्द्रे च(6.1.124)

वृत्ति – गोरवङ् स्यादिन्द्रे।

सूत्रार्थ – इन्द्र शब्द परे रहते भी एङन्त गो शब्द के अन्त्य ओकार के स्थान पर अवङ् आदेश होता है।

उदाहरण – गवेन्द्रः।

व्याख्या – यह अवङ् विधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'इन्द्रे' सप्तमी एकवचन और 'च' यह अव्यय पद है। यह सूत्र **अवङ् स्फोटायनस्य** सूत्र का अपवाद है। उस सूत्र से अवङ् आदेश विकल्प से होता था परन्तु इस सूत्र से नित्य होता है।

गवेन्द्रः – गो+इन्द्र इस स्थिति में **इन्द्रे च** सूत्र से इन्द्र शब्द परे रहते गो शब्द के अन्त्य ओकार के स्थान पर अवङ् (अव) आदेश हुआ। ग्+अव+इन्द्र इस स्थिति में **आद्गुणः** सूत्र से वकारोत्तरवर्ती अकार से परे इन्द्र घटक इकार अच् है अतः पूर्वपर के स्थान पर गुण एकादेश एकार हुआ। ग्+अवे+न्द्र इस स्थिति में वर्णसम्मेलन तथा स्वादिकार्य होकर गवेन्द्रः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – दूराद्धूते च(8.2.84)

वृत्ति – दूरात्सम्बोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा।

सूत्रार्थ – दूर से सम्बोधन करने में प्रयुक्त जो वाक्य उसकी टि को विकल्प से प्लुत होता है।

व्याख्या – यह प्लुतविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'दूरात्' पंचमी एकवचन, 'हूते' सप्तमी एकवचन और 'च' यह अव्यय पद है। एक स्थान से दूसरे स्थान के व्यक्ति को सूचना देने हेतु किए गए आवाहन में प्रयुक्त पद यदि विशेष प्रयत्न से सुनाई दे उसे दूर स्थान कहते हैं। उस दूर स्थान से किसी को कुछ बताने अथवा बुलाने के लिए जो वाक्य जोर से प्रयुक्त किया जाता है उसकी टि को प्रस्तुत सूत्र से विकल्प करके प्लुत होता है।

सूत्र – प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्(6.1.125)

वृत्ति – एतेऽचि प्रकृत्या स्युः।

सूत्रार्थ – प्लुत और प्रगृह्यसंज्ञक से अच् परे रहते नित्य ही प्रकृतिभाव होता है।

उदाहरण – आगच्छ कृष्ण३ अत्र गौश्चरति।

व्याख्या – यह प्रकृतिभावविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र मे तीन पद हैं। 'प्लुतप्रगृह्याः' प्रथमा बहुवचन, 'अचि' सप्तमी बहुवचन तथा 'नित्यम्' द्वितीया एकवचन का पद है। प्लुत स्वरवर्णों की संज्ञा है। ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः सूत्र से स्वर वर्णों की ह्रस्व, दीर्घ और प्लुतसंज्ञा होती है।

रूपसिद्धि –

आगच्छ कृष्ण३ अत्र गौश्चरति – इस वाक्य के प्रथम उपवाक्य आगच्छ कृष्ण के टि णकारोत्तरवर्ती अकार को पूर्व सूत्र **दूराद्धूते च** इस सूत्र से विकल्प से प्लुत हुआ। आगच्छ कृष्ण३ इस स्थिति में द्वितीय उपवाक्य अत्र गौश्चरति के परे रहते णकारोतरवर्ती अकार से परे सवर्णी अच् अत्र घटक अकार है अतः **अकः सवर्णे दीर्घः** इस सूत्र से सवर्णदीर्घ प्राप्त हुआ। जिसे बाधकर **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** इस सूत्र से प्लुत णकारोत्तरवर्ती अकार से परे अत्र घटक ह्रस्व अकार है अतः प्रकृतिभाव होकर आगच्छ कृष्ण३ अत्र गौश्चरति रूप सिद्ध हुआ। चूँकि प्लुत विकल्प से होता है अतः जिस पक्ष में प्लुत नहीं होगा उस पक्ष में सवर्णदीर्घ होकर आगच्छ कृष्णात्र गौश्चरति रूप बनेगा।

सूत्र – ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्(1.1.11)

वृत्ति – ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यसंज्ञं स्यात्।

सूत्रार्थ – दीर्घ ईकारान्त, दीर्घ ऊकारान्त तथा एकारान्त द्विवचन की प्रगृह्यसंज्ञा होती है।

उदाहरण – हरी एतौ। विष्णू इमौ। गङ्गे अमू।

व्याख्या – यह प्रगृह्यसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। ईदूदेद्, द्विवचनम् और प्रगृह्यम् ये तीनों पद प्रथमा एकवचन के हैं।

रूपसिद्धि –

हरी एतौ – हरी+एतौ इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र **ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्** से ईकारान्त द्विवचनान्त हरी पद की प्रगृह्यसंज्ञा हुई। तत्पश्चात् यहाँ इक् से अच् परे

रहते **इको यणचि** से प्राप्त यण् को बाधकर **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** सूत्र से प्रगृह्यसंज्ञक से अच् परे रहते प्रकृतिभाव हुआ अर्थात् यथास्थिति में रहकर हरी एतौ रूप सिद्ध हुआ।

विष्णू इमौ – विष्णू+इमौ इस स्थिति में **ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्** इस सूत्र से ऊकारान्त द्विवचनान्त विष्णू पद की प्रगृह्यसंज्ञा हुई। तत्पश्चात् यहाँ इक् से अच् परे रहते **इको यणचि** से प्राप्त यण् को बाधकर **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** सूत्र से प्रगृह्यसंज्ञक से अच् परे रहते प्रकृतिभाव होकर विष्णू इमौ रूप सिद्ध हुआ।

गङ्गे अमू – गङ्गे+अमू इस स्थिति में **ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्** इस सूत्र से एकारान्त द्विवचनान्त गङ्गे पद की प्रगृह्यसंज्ञा हुई। तत्पश्चात् यहाँ पर एच् से अच् परे रहते **एचोऽयवायावः** से प्राप्त अयादि आदेश को बाधकर **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** सूत्र से प्रगृह्यसंज्ञक से अच् परे रहते प्रकृतिभाव होकर गङ्गे अमू रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – अदसो मात्(1.1.12)

वृत्ति – अस्मात्परावीदूतौ प्रगृह्यौ स्तः।

सूत्रार्थ – अदस् सम्बन्धी मकार के बाद ईकार तथा ऊकार शब्द के अन्त में हो तो उनकी प्रगृह्यसंज्ञा होती है।

उदाहरण – अमी ईशाः। रामकृष्णावमू आसाते। मात्किम्? अमुकेऽत्र।

व्याख्या – यह प्रगृह्यसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'अदसः' और 'मात्' ये दोनों पद पंचमी एकवचन के हैं। अदस् शब्द सम्बन्धी मकार से परे यदि ईकार तथा ऊकार शब्द के अन्त में हो तो उसकी प्रगृह्यसंज्ञा होती है। अदस् सम्बन्धी मकार के बाद ईकार तथा ऊकार ही प्राप्त होते हैं अतः एकार का ग्रहण नहीं हुआ है। पूर्व सूत्र से केवल द्विवचन में ही प्रगृह्यसंज्ञा हो सकती थी, इस सूत्र से अदस् के द्विवचनान्त अमू तथा बहुवचनान्त अमी दोनों स्थानों पर प्रगृह्यसंज्ञा हो जायेगी। सूत्र में मकार के बाद ईकार तथा ऊकार हो तो ही प्रगृह्यसंज्ञा होती है ऐसा कहने के फलस्वरूप अमुके+अत्र यहाँ पर मकार के बाद एकार न होने से प्रगृह्यसंज्ञा नहीं हुई।

रूपसिद्धि –

अमी ईशाः – अमी+ईशा इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र **अदसो मात्** से अदस् सम्बन्धी मकार के बाद ईकार है अतः उसकी प्रगृह्यसंज्ञा हुई। मकारोत्तरवर्ती ईकार से सवर्णी अच् ईशा घटक ईकार परे रहते **अकः सवर्णे दीर्घः** से प्राप्त सवर्णदीर्घ को प्रगृह्यसंज्ञक से अच् परे होने के कारण बाधकर **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** इस सूत्र से प्रकृतिभाव होकर अमी ईशाः रूप सिद्ध हुआ।

रामकृष्णावमू आसाते – अमू+आसाते इस स्थिति में प्रस्तुत सूत्र **अदसो मात्** से अदस् सम्बन्धी मकार के बाद ऊकार है अतः उसकी प्रगृह्यसंज्ञा हुई। मकारोत्तरवर्ती ऊकार से सवर्णी अच् आसाते घटक आकार परे रहते **इको यणचि** से प्राप्त यण् को बाधकर **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** इस सूत्र से प्रगृह्यसंज्ञक से अच् परे रहते प्रकृतिभाव होकर अमू आसाते रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – चादयोऽसत्वे(1.4.57)

वृत्ति – अद्रव्यार्थाश्चादयो निपाताः स्युः।

सूत्रार्थ – अद्रव्यार्थक चादियों की निपातसंज्ञा होती है।

व्याख्या – यह निपातसंज्ञक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'चादयः' प्रथमा एकवचन तथा 'असत्त्वे' यह सप्तमी एकवचन का पद हैं। **लिङ्गसंख्यान्वयित्वं द्रव्यत्वम्** अर्थात् जिन शब्दों में लिङ्ग और संख्या का अन्वय (बोध) हो उन्हें द्रव्य कहते हैं। चादिगण अव्यय प्रकरण में वर्णित हैं। जिनकी निपात संज्ञा होती है उनकी अव्यय संज्ञा भी हो जाती है। जिसके फलस्वरूप विभक्तिलोप हो जाने से सभी विभक्तियों में एकसमान रूप रहता है।

सूत्र – प्रादयः(1.4.58)

वृत्ति – एतेऽपि तथा।

सूत्रार्थ – अद्रव्यार्थक चादियों की भी निपात संज्ञा होती है।

व्याख्या – यह निपातसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। सूत्र में 'प्रादयः' यह एकमात्र पद प्रथमा बहुवचन का है। असत्त्वे की अनुवृत्ति तथा निपाताः का अधिकार आता है। प्रादिगण पीछे उपसर्गसंज्ञा के प्रसंग में परिगणित है।

सूत्र – निपात एकाजनाङ्(1.1.14)

वृत्ति – एकोऽज् निपात आङ्वर्जः प्रगृह्यः स्यात्।

सूत्रार्थ – आङ् को छोड़कर जो एकाच् (एक अच् वाला) निपात है, उसकी प्रगृह्यसंज्ञा होती है।

उदाहरण – इ इन्द्रः। उ उमेशः। वाक्यस्मरणयोरङित्। आ एवं नु मन्यसे। आ एवं किल तत्।

व्याख्या – यह निपातसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'निपातः', 'एकाज्' और 'अनाङ्' ये तीनों पद प्रथमा एकवचन के हैं। प्रगृह्य पद की अनुवृत्ति आ रही है। एकाच् निपात से अभिप्राय एक अच् वर्णात्मक निपात से है, समुदायस्थ एक अच् वर्ण से नहीं। अतः इ, उ एकाच् रूप निपात की प्रगृह्यसंज्ञा तो होगी परन्तु च, सु आदि एक अच् वाले समुदाय की प्रगृह्यसंज्ञा नहीं होगी। चादि गण में आ तथा आङ् ये दो निपात परिगणित हैं, जिसमें प्रथम आ की तो प्रगृह्यसंज्ञा होती है परन्तु ङित् आङ् (ङकार इत्संज्ञक आ) की प्रगृह्यसंज्ञा नहीं होगी।

रूपसिद्धि –

इ इन्द्रः – इ+इन्द्र में प्रथम इ निपातसंज्ञक तथा एकाच् भी है अतः उसकी प्रस्तुत सूत्र **निपात एकाजनाङ्** से प्रगृह्यसंज्ञा हुई। जिसके फलस्वरूप सवर्णदीर्घ को बाधकर **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** सूत्र से प्रकृतिभाव होकर इ इन्द्रः रूप सिद्ध हुआ।

उ उमेशः – उ+उमेश इस स्थिति में प्रथम उ एकाच् निपात है अतः उसकी **निपात एकाजनाङ्** से प्रगृह्यसंज्ञा हुई। जिसके फलस्वरूप सवर्णदीर्घ को बाधकर **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** सूत्र से प्रकृतिभाव होकर उ उमेशः रूप सिद्ध हुआ।

आ एवं नु मन्यसे एवं आ एवं किल तत् – इन दोनों वाक्यों में आ यह अङित् निपातसंज्ञक है अतः उसकी **निपात एकाजनाङ्** से प्रगृह्यसंज्ञा हुई। जिसके फलस्वरूप वृद्धि को बाधकर **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** सूत्र से प्रकृतिभाव होकर आ एवं नु मन्यसे एवं आ एवं किल तत् रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – ओत्(1.1.15)

वृत्ति – ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः स्यात्।

सूत्रार्थ – ओदन्त (ओ हो अन्त में जिसके) निपात की भी प्रगृह्यसंज्ञा होती है।

उदाहरण – अहो ईशाः।

व्याख्या – यह प्रगृह्यसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में ओत् यह एकमात्र पद प्रथमा एकवचन का है। पूर्व सूत्रों से निपात तथा प्रगृह्य की अनुवृत्ति आती है। अहो के एकाच् निपात नहीं होने से इसकी प्रगृह्यसंज्ञा नहीं प्राप्त थी।

रूपसिद्धि –

अहो ईशाः – अहो+ईशा इस स्थिति में **एचोऽयवायावः** से अवादेश प्राप्त था, परन्तु अहो यह अद्रव्यार्थक चादि है अतः इसकी **चादयोऽसत्त्वे** इस सूत्र से निपात संज्ञा हुई। निपातसंज्ञक अहो की प्रस्तुत **ओत्** से प्रगृह्यसंज्ञा हुई। प्रगृह्यसंज्ञक हकारोत्तरवर्ती ओकार से अच् परे रहते **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** से प्रकृतिभाव होकर अहो ईशाः रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे(1.1.16)

वृत्ति – सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्योऽवैदिके इतौ परे।

सूत्रार्थ – सम्बुद्धिनिमित्तक ओकार से अवैदिक (लौकिक) इति शब्द के परे होने पर विकल्प से प्रगृह्यसंज्ञा होती है।

उदाहरण – विष्णो इति, विष्ण इति, विष्णविति।

व्याख्या – यह प्रगृह्यसंज्ञाविधायक संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में चार पद हैं। 'सम्बुद्धौ' सप्तमी एकवचन, 'शाकल्यस्य' षष्ठी एकवचन तथा इतौ और अनार्षे सप्तमी एकवचन के पद हैं। सूत्र में शाकल्यस्य पद से पाणिनि पूर्ववर्ती वैयाकरण आचार्य शाकल्य का मत अभिप्रेत है।

रूपसिद्धि –

विष्णो इति – विष्णो+इति इस स्थिति में अवादेश प्राप्त है, परन्तु अवैदिक इति शब्द के परे रहते **सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे** सूत्र से विष्णो की प्रगृह्यसंज्ञा हुई। प्रगृह्यसंज्ञक णकारोत्तरवर्ती ओकार से अच् परे रहते **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** सूत्र से

प्रकृतिभाव होकर विष्णो इति रूप सिद्ध हुआ। पक्ष में जब प्रगृह्यसंज्ञा नहीं होगी तब अवादेश तथा वकार का विकल्प से लोप करके विष्ण इति तथा विष्णविति ये दो रूप बनेंगे।

सूत्र – मय उञो वो वा(8.3.33)

वृत्ति – मयः परस्य उञो वो वाऽचि।

सूत्रार्थ – मय् से परे उञ् निपात को विकल्प से व् आदेश होता है, अच् परे रहते।

उदाहरण – किम्वुक्तम्, किमु उक्तम्।

व्याख्या – यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में चार पद हैं। 'मयः' पंचमी एकवचन, 'उञः' षष्ठी एकवचन, वः यह प्रथमा एकवचन का तथा वा यह अव्यय पद है। मय् प्रत्याहार के अन्तर्गत ञकार को छोड़कर वर्ग के सभी वर्ण आते हैं। प्रस्तुत सूत्र **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** सूत्र का अपवाद है। पक्ष में जब वकार आदेश नहीं होगा तो प्रकृतिभाव हो जायेगा।

रूपसिद्धि –

किम्वुक्तम्, किमु उक्तम् – किम्+उ+उक्तम् इस स्थिति में अच् उक्तम् घटक उकार के परे रहते **मय उञो वो वा** इस सूत्र से मय् से परे उञ् निपात को व् आदेश हुआ। किम्+व्+उक्तम् इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके किम्वुक्तम् रूप सिद्ध हुआ। पक्ष में जब व् आदेश नहीं होगा तो उञ् की **निपात एकाजनाङ्** से प्रगृह्यसंज्ञा हुई। जिसके फलस्वरूप सवर्णदीर्घ को बाधकर **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** सूत्र से प्रकृतिभाव होकर किमु उक्तम् रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च(6.1.127)

वृत्ति – पदान्ता इको ह्रस्वा वा स्युरसवर्णेऽचि। ह्रस्वविधिसामर्थ्यान्न स्वरसन्धिः। चक्रि अत्र, चक्रयत्र। पदान्ता इति किम् ? गौर्यौ।

सूत्रार्थ – असर्वणी अच् परे रहते पदान्त इक् को विकल्प से ह्रस्व होता है। ह्रस्वविधान करने के सामर्थ्य से स्वरसन्धि नहीं होती है।

उदाहरण – चक्रि अत्र, चक्रयत्र।

व्याख्या – यह ह्रस्वविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में पाँच पद हैं। 'इकः' षष्ठी एकवचन, 'असवर्णे' सप्तमी एकवचन, 'शाकल्यस्य' षष्ठी एकवचन, 'ह्रस्वः' प्रथमा एकवचन और 'च' यह अव्यय पद है। इस सूत्र में भी शाकल्य के मत का ग्रहण है। पदान्त इक् को ह्रस्व होता है ऐसा कहने से गौरी+औ के अपदान्त गौरी शब्द में ह्रस्व नहीं होगा।

रूपसिद्धि –

चक्रि अत्र, चक्रयत्र– चक्री+अत्र इस स्थति में चक्री पद के अन्त्य ईकार से असवर्णी अच् इकार परे है अतः **इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च** सूत्र से ईकार को ह्रस्व इकार हुआ। चक्रि+अत्र ह्रस्व इकार विधान के सामर्थ्य से कोई अन्य सन्धि नहीं होती

और चक्रि अत्र रूप सिद्ध होता है। पक्ष में जब ह्रस्व नहीं होगा तो यण् आदेश होकर के चक्रयत्र रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – अचो रहाभ्यां द्वे(8.4.46)

वृत्ति – अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः। गौर्य्यौ। (न समासे)। वाप्यश्वः।

सूत्रार्थ – अच् से परे जो रेफ और हकार उससे परे जो यर् उसे द्वित्व विकल्प से होता है। परन्तु यह कार्य समास में नहीं होता।

उदाहरण – गौर्य्यौ।

व्याख्या – यह द्वित्वविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। 'अचः' पंचमी एकवचन, 'रहाभ्याम्' पंचमी द्विवचन तथा 'द्वे' यह प्रथमा द्विवचन का पद है।

रूपसिद्धि –

गौर्य्यौ – गौरी+औ इस स्थिति में **इको यणचि** से यणादेश होकर गौर्+य्+औ इस स्थिति में **अचो रहाभ्यां द्वे** सूत्र से अच् (गकारोत्तरवर्ती औकार) से परे रेफ तथा उस रेफ से परे यर् (यकार) को विकल्प से द्वित्व हुआ। गौर्+य्+य्+औ इस स्थिति में वर्णसम्मेलन करके गौर्य्यौ रूप सिद्ध हुआ। पक्ष में जब द्वित्व नहीं होगा तो गौर्यौ रूप बनेगा।

सूत्र – ऋत्यकः(6.1.128)

वृत्ति – ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद्वा। ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः। पदान्ताः किम्? आर्च्छत्।

सूत्रार्थ – ह्रस्व ऋकार परे रहते पदान्त अक् को ह्रस्व विकल्प से होता है।

उदाहरण – ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः।

व्याख्या – यह ह्रस्वविधायक विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। 'ऋति' सप्तमी एकवचन तथा 'अकः' यह षष्ठी एकवचन का पद है। पदान्त में ही अक् को ह्रस्व होगा ऐसा कहने से आ+ऋच्छत् यहाँ पर ह्रस्व नहीं हुआ। पूर्व सूत्र से आकार को ह्रस्व प्राप्त नहीं था अतः इस सूत्र का विधान हुआ।

रूपसिद्धि –

ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः – ब्रह्मा+ऋषि इस स्थिति में **ऋत्यकः** इस सूत्र से पदान्त में अक् (आकार) से ऋषि घटक ह्रस्व ऋकार के परे होने पर आ को ह्रस्व अ होकर के ब्रह्म ऋषि रूप सिद्ध हुआ। यहाँ पर भी ह्रस्व विधान के सामर्थ्य से कोई अन्य सन्धि नहीं होगी। पक्ष में जब ह्रस्व नहीं होगा उस पक्ष में **आद्गुणः** सूत्र से गुण होकर पूर्व आ और पर ऋ के स्थान पर अर् होकर ब्रह्मर्षिः रूप सिद्ध हुआ।

बोध प्रश्न

1. समुचित विकल्प का चयन कीजिए–

i. उपोषति इस पद का सन्धिविच्छेद होगा –

(क) उप+उषति (ख) उप+औषति (ग) उप+ओषति (घ) उपौ+अषति

ii. **अचोऽन्त्यादि टि** यह सूत्र है –

(क) संज्ञासूत्र (ख) विधिसूत्र (ग) नियमसूत्र (घ) अधिकारसूत्र

iii. मनस् में टिसंज्ञक होगा –

(क) नस् (ख) स् (ग) अस् (घ) अनस्

iv. शिवायों नमः यह उदाहरण सूत्र का है–

(क) आद्‌गुणः (ख) वृद्धिरादैच् (ग) एङि पररूपम् (घ) ओमाङोश्च

v. इकार का सवर्णी है –

(क) अकार (ख) आकार (ग) ईकार (घ) उकार

2. **सत्य अथवा असत्य कथन हेतु क्रमशः सही (√) या गलत (×) का चिह्न लगाइए–**

i. श्रीशः दीर्घ सन्धि का उदाहरण है– ( )

ii. एङ् प्रत्याहार में चार वर्ण आते हैं– ( )

iii. **ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्** यह संज्ञासूत्र है– ( )

iv. गवाग्रम् का वैकल्पिक रूप गोऽग्रम् बनता है– ( )

v. अवङ् आदेश ङित् होता है– ( )

3. **समुचित उत्तर द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए –**

i. ङित् आदेश ....के स्थान पर होता है।

ii. **अनेकाल् शित् सर्वस्य** यह........... सूत्र है।

iii. प्रगृह्यसंज्ञा दीर्घ औकारान्त की......... है।

iv. गवेन्द्रः का द्वितीय रूप .... है।

v. अद्रव्यार्थक चादियों की......... संज्ञा होती है।

अभ्यास प्रश्न

1. **सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे** सूत्रस्थ पदों की सङ्ख्या एवं विभक्तियाँ बताइए।
2. **अन्तादिवच्च** सूत्र की कार्यविधि को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
3. प्रगृह्यसंज्ञक सूत्रों को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
4. शिवेहि इस प्रयोग की ससूत्र सिद्धि कीजिए।
5. **ऋत्यकः** सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

5.3 सारांश

इस इकाई में हमने अच् सन्धि के **एङि पररूपम्**(6.1.94) सूत्र से लेकर **ऋत्यकः**(6.1. 128) तक के सूत्रों का सम्यक् रूप से अध्ययन किया। इस प्रकार इस इकाई में हमने पररूप सन्धि, टिसंज्ञा एवं उसके फल अतिदेशव्यवस्था की कार्यविधि, दीर्घसन्धि तथा

पूर्वरूपसन्धि का अध्ययन किया। तत्पश्चात् सन्ध्यभाव के स्थलों अर्थात् प्रकृतिभाव विषयक सूत्रों से परिचित हुए। इसी क्रम में परिभाषासूत्रों तथा प्रगृह्य एवं निपातसंज्ञा का परिचय भी प्राप्त किया। इकाई के अन्त में पूर्वस्वर को विकल्प से ह्रस्व होना एवं ह्रस्वपक्ष में सन्ध्यभाव से भी परिचित हुए।

5.4 शब्दावली

पररूप – पररूप एकादेश का अभिप्राय यह है कि पूर्व एवं पर में स्थित दोनों वर्णों के स्थान में परवर्ण जैसा रूपवाला एकादेश होना।

प्रकृतिभाव – प्रकृतिभाव का अर्थ स्वभाव है। वर्णों का स्वभाव उनका स्वरूप ही हो सकता है। प्रकृतिवद् अथवा प्रकृतिभाव से अभिप्राय शब्द का उसके मूल अवस्था में विद्यमान रहना अर्थात् कोई विकार न होना है।

अनेकाल् – एक से अधिक वर्ण हो जिसमें वह अनेकाल् कहलाता है।

दूर – जिस स्थान से किसी दूसरे स्थान के व्यक्ति को कोई सूचना देनी हो तथा आवाहन के लिए प्रयुक्त पद यदि साधारण प्रयत्न से न सुनाई दे किन्तु विशेष प्रयत्न से सुनाई दे तो उस स्थान को दूर स्थान कहते हैं।

अतिदेश – जो जैसा नहीं है उसे वैसा मान लेना या बना देना ही अतिदेश है।

आकृतिगण – **आकृत्या स्वरूपेण कार्यदर्शनेन वा गण्यते परिचीयते इति आकृतिगणः** अर्थात् अपनी आकृति, स्वरूप या (शब्द में दिखाई देने वाले) कार्य से परिगणित अथवा परिचित होने वाले शब्दसमूह को आकृतिगण कहतें हैं। इस प्रकार के गण में जितने शब्द पठित हैं उनसे अतिरिक्त भी समान आकृति, स्वरूप अथवा कार्य वाले शब्दों का परिगणन आकृतिगण में किया जा सकता है। यही इस गण की विशेषता है।

5.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

वरदराजाचार्य, मूल लघुसिद्धान्तकौमुदी. गोरखपुर, गीताप्रेस.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या॰ गोविन्दाचार्य. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, चौखम्भा सुरभारती.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या॰ शास्त्री, धरानन्द. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या॰ शास्त्री, भीमसेन. लघुसिद्धान्तकौमुदी. (भाग–1–6), दिल्ली, भैमी प्रकाशन.

शास्त्री, चारुदेव. व्याकरण चन्द्रोदय. (भाग–1–3), दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास.

वरदराजाचार्य, सम्पा॰ एवं हिन्दी सिंह, सत्यपाल. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, शिवालिक पब्लिकेशन.

Apte, V.S. ***The Students' Guide to Sanskrit Composition*.** Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.

Kale, M.R. ***Higher Sanskrit Grammar*** .MLBD, Delhi.

Kanshi Ram, ***Laghusiddhantkaumudi***. (Vol. 1-3). MLBD. Delhi, 2009.

Ballantyne, James R. ***Laghusiddhantkaumudi***. Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.

5.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1. i. ग, ii. क, iii. ग, iv. घ v. ग
2. i. सत्य, ii. असत्य, iii. सत्य, iv. सत्य, v. सत्य
3. i. अन्त्य अल् ii. परिभाषासूत्र iii. नहीं iv. नहीं v. निपात

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।